International Journal of Applied Research 2017; 3(10): 282-285

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(10): 282-285
www.allresearchjournal.com
Received: 19-08-2017
Accepted: 22-09-2017

डॉ. अशोक कुमार दुबे
एसोशिएट प्रोफेसर–संस्कृत
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ,
उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अशोक कुमार दुबे
एसोशिएट प्रोफेसर–संस्कृत
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ,
उत्तर प्रदेश, भारत

समाजोपकारक आध्यात्मरामायण

डॉ. अशोक कुमार दुबे

सारांश
भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का सम्पोषक ग्रन्थरत्न अध्यात्मरामायण में महर्षि वादरायण व्यास जी ने श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहासादि में उद्धृत धर्मयुक्त जीवनमूल्यों को स्थापित करने की चेष्टा की है। वास्तव में मानव धर्म का अनुपालन करने वाला मनुष्य ही एक उत्कृष्ट परिवार, समाज और एक आदर्श राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। वेदव्यास जी ने नैतिकता के चाक पर आदर्श पात्रों का सुन्दर स्वरूप सृजित किया है। अध्यात्मरामायण के सभी पात्र धर्मपरक गुणों से युक्त हैं। जो अपने आवरण से समाजोपकारक सन्देश देते हैं। आज जहां अधिकांश परिवारों में धन–सम्पत्ति गृह कलह का कारण बन रही है। जहाँ पुत्र अपने पिता से सम्पत्ति के लिए उलझ पड़ता है, वहाँ ऐसे स्वार्थी और मोह जलधि में डूबते लोगों के लिए राम और भरत का त्याग तथा लक्ष्मण का सेवा भाव प्रकाश स्तम्भ बनकर खड़ा है।

न मे भोगागमे वा०छा न मे भोगविवर्जने।
आगच्छत्वथ मागच्छावभोगवशगो भवेत्।।

मुख्यशब्दः समाज, लोकोपकार, अध्यात्मरामायण, व्याकुलता, स्वानुशासित आदि

प्रस्तावना
महर्षि बादरायण वेदव्यास जी ने 'अध्यात्मरामायण' में श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहास आदि में उद्धृत धर्म के साररूप में उदात्त जीवन–मूल्यों को स्थापित करने की चेष्टा की है। इसीलिए 'अध्यात्मरामायण' की प्रशंसा में उनके मुखारविन्द से यह पद्यपुष्प स्वतः प्रस्फुटित होता है–

श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानि च।
अर्हन्ति नाल्पमध्यात्मरामायणकलामपि।। [1]

वेदव्यास जी का सम्पूर्ण सत्प्रयत्न मानव को मानव धर्म सिखाने में लगा है। मानव धर्म का अनुपालन करने वाला मनुष्य ही वास्तव में एक उत्कृष्ट एवं आदर्श परिवार, आदर्श समाज और आदर्श राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। नैतिकता के 'चाक' पर वेदव्यास जी ने आदर्श पात्रों का सुन्दर रूप सृजित किया है। ये सभी पात्र स्वानुशासित और अपने–अपने धर्म का दृढ़तापूर्वक निर्वाह करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। धर्म का स्थूल रूप से दो भेद माने जा सकते हैं। एक तो है उपासना पद्धति, दूसरी है उदात्त जीवन पद्धति। सुन्दर, सुखमय और शान्त जीवन जीने के लिए व्यक्ति को कैसी जीवन–शैली अपनानी चाहिए, इस विषय में प्राचीन ऋषि–मनीषियों और विचारकों ने विस्तार से चर्चा की है–

अहिंसा सत्यमक्रोधस्तपो दानं दमो मतिः।
अनसूयाप्यमात्सर्यमनीर्ष्या शीलमेव च।। [2]

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अक्रोध, तप, दान, दम, मति, अनसूया, अमात्सर्य, अनीर्ष्या और शीलपूर्ण व्यवहार उदात्त जीवन शैली के दस मानवीय गुणों की नितान्त आवश्यकता प्रत्येक परिवार, समाज एवं राष्ट्र के लिए होती है। मनुस्मृतिकार मनु ने इसी भावाभिव्यक्ति को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है–

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मानः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।। [3]

अर्थात् वेद, स्मृति, सदाचार और स्वयं का अभीष्ट वस्तु इन चारों को मनुस्मृतिकार मनु ने धर्म का साक्षात् लक्षण बताया है। पुनः आगे चलकर गुणात्मक धर्म के दस लक्षण उन्होंने समस्त मानवों के अभ्युदय के लिए आवश्यत बताये हैं। यानि समाज और उसकी एक ईकाई परिवार में मनुष्य को पारस्परिक सौहार्द, सौमनस्य, शान्ति और सुव्यवस्था बनाए रखने के लिए इन गुणों की अत्यन्त आवश्यकता है–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधा दशकं धर्मलक्षणम्।। [4]

अर्थात् धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दस धर्म के लक्षण हैं। जिसका सामाजिक धरातल पर अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान होता है।

अध्यात्मरामायण के सभी आदर्श पात्र इन सबका समुच्चय है। इन गुणों को धारण करने वाला व्यक्ति निःसन्देह ही एक आदर्श परिवार का निर्माता बन सकता है। क्षमा, समत्व, धैर्य, सन्तोष, विरक्ति, निश्छलता, दान, शील और संयम ये सब के सब गुण व्यक्ति को अधिकार प्राप्ति से अधिक कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करते हैं। परस्पर प्रेम के नैरन्तर्य की सुरक्षा कवच के लिए सहिष्णुता का पाठ सिखाते हैं और त्यागमयी वृत्ति को बढ़ावा देते हैं। ऐसे गुणी, प्रेम और उदार हृदय व्यक्ति यदि किसी बृहत् परिवार अर्थात् समाज का मुखिया बनता है, तो वह समाज भी परस्पर प्रेम और विश्वास के मूल्यों का ही अनुपालन करता है। इसीलिए तो ''यथा राजा तथा प्रजा'' के नियम का अनुपालन करती हुई राम की प्रजा में सभी छल–कपट रहित थे तथा पुरुषोत्तम राम के शासन काल में पृथ्वी धनधान्य से पूर्ण और वृक्ष फलादि से सम्पन्न थी–

राघवे शासति भुवं लोकनाथे रमापतौ।
वसुधसा सस्यसम्पन्ना फलवन्तश्च भूरुहाः।।
जना धर्मपराः सर्वे पतिभक्तिपराः स्त्रियः।
नापश्यत्पुत्रमरणं कश्चिद्राजनि राघवे।। [5]

अर्थात् पृथ्वी के धनधान्य से सम्पन्न होने के साथ रघुनाथ जी के राज्य के समस्त पुरुष धर्मपरायण थे। स्त्रियाँ पति–सेवा में तत्पर रहती थीं और किसी को भी अपने पुत्र का मरण नहीं देखना पड़ता था। इन वाक्यों से यह स्पष्ट होता है कि जहाँ शासक धर्मनिष्ठ होकर शासन करता है। वहाँ प्रजाजन भी धर्म में विश्वास करने वाले और सन्तुष्ट चित्त होकर सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं एवं सम्पूर्ण सामाजिक वातावरण सौहार्दपूर्ण होता है। यद्यपि आज के समाज में ऐसी स्थिति दृष्टिगोचर नहीं होती जबकि हम परिस्थिति में अध्यात्मरामायण अत्यन्त अनुकरणीय है। वैसे ही जहाँ आज के समाज में माता, पिता और आचार्य के प्रति सम्मान की चर्चा की जा रही है। वहाँ अध्यात्मरामायण के इस पद्य पर अनायास ध्यान केन्द्रित हो जाता है कि राम ने अपने श्रेष्ठजन के प्रति कैसी आदराभिव्यक्ति की है–

प्रातरुत्थाय सुस्नातः पितरावभिवाद्य च।
पौरकार्याणि सर्वाणि करोति विनयान्वितः।।
बन्धुभिः सहितो नित्यं भुक्त्वा मुनिभिरन्वहम्।
धर्मशास्त्ररहस्यानि श्रृणोति व्याकरोति च।। [6]

अर्थात् राम प्रातःकाल उठकर स्नान करने के अनन्तर माता–पिता को प्रणाम करके नम्रतापूर्वक नगर–निवासियों के समस्त कार्य को करते थे। राम के विनम्रतापूर्वक किये गये व्यवहार से शिक्षा मिलती है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने श्रेष्ठजन के प्रति विनम्र होना चाहिए तथा जिसका जो स्थान है, उसको सम्मान एवं महत्व देना चाहिए। यद्यपि आज के इस वैश्विक समाज में दिन–प्रतिदिन आदरभाव एवं विनम्रतायुक्त व्यवहार की कमी होती चली जा रही है, जिससे अशान्त वातावरण सर्वत्र दिखायी दे रहा है। इस परिस्थिति में अध्यात्मरामायण में वर्णित इस प्रकार के व्यवहार ग्रहणीय हैं। इसी प्रकार जहाँ माता–पिता के प्रति पुत्र के व्यवहार एवं आदेश पालन की बात की जाती है, वहाँ अध्यात्मरामायण में वर्णित इस पद्य को देखा जा सकता है–

यथा प्रवाहपतितपल्वानां सरितां तथा।
चतुर्दशसमासङ्ख्या क्षणार्द्धमिव जायते।।
अनुमन्स्व मामम्ब दुःखं सन्त्यज्य दूरतः।
एवं चुत्सुखसंवासो भविष्यति वने मम।।
इत्युक्त्वा दण्डवन्मातुः पादयोरपतच्चिरम्।
उत्थाप्याङ्के समावेश्य आशीर्भिरभ्यनन्दयत्।। [7]

श्रीराम अपने वनवास के निर्णय को सुनकर भी हतप्रभ नहीं होते, अपितु आदरपूर्वक सहर्ष स्वीकार करते हुए अपने माता को समझाते हैं कि–जैसे नदी के प्रवाह में पड़कर बहती हुई डोंगियाँ सदा साथ–साथ ही नहीं चलती वैसे ही हे मातः! यह चौदह वर्ष की अवधि आधे क्षण के समान बीत जायेगी। अतः आप अब दुःख को दूर करके हमें वन जाने की अनुमति दीजिये। आपके ऐसा करने से मैं वन में सुखपूर्वक रह सकूँगा। ऐसा कहकर अपने माता के चरणों में बहुत देर तक पड़े रहे।

वास्तव में इस प्रकार की त्यागवृत्ति अद्यतन समाज में दुर्लभ ही है। राम का सम्पूर्ण जीवन माता–पिता तथा गुरु के आज्ञा–पालन व उनके चरित्र को निर्दोष भाव से देखने एवं उसके अनुकरण करने में व्याप्त रहा हैं। यह उनके स्वभाव की अद्भुत सहिष्णुता व सन्तोष–वृत्ति का परिचायक है। जो आज के समग्र युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणास्पद एवं अनुकरणीय है। यही नहीं उत्तम, मध्यम और अधम कोटि के पुत्र की परिभाषा स्वयं राम के मुख से अध्यात्मरामायण में इस प्रकार अभिव्यक्त है–

अनाज्ञप्तोऽपि कुरुते पितुः कार्यं स उत्तमः।।
उक्तं करोति यः पुत्रः स मध्यम उदाहृतः।
उक्तऽपि कुरुते नैव स पुत्रो मल उच्यते।।
अतः करोमि तत्सर्वं यन्मामाह पिता मम।
सत्यं सत्यं करोम्येव रामो द्विर्नाभिभाषते।। [7]

अर्थात् जो पुत्र पिता की आज्ञा के बिना ही उनका अभीष्ट कार्य करता है वह उत्तम है। जो पिता के कहने पर करता है वह मध्यम होता है और जो कहने पर भी नहीं करता वह पुत्र तो अधम कोटि का होता है। निःसन्देह जिस परिवार में जनक–जननी के प्रति निष्कपट प्रेम, श्रद्धा व विश्वास के ऐसे पूरा संस्कार होंगे, वहाँ न तो किशोरावस्था में संतान के उद्दण्ड या उच्श्रृंखल होने की संभावना रहेगी और न ही माता–पिता के वृद्ध होते ही उन्हें असहाय, रुग्ण व भारस्वरूप मानते हुए उनकी अवहेलना करने या 'वृद्धाश्रम' का रास्ता दिखाने की भावना होगी। वास्तव में सहनशीलता, सेवा, सम्मान की भावना होगी। वास्तव में सहनशीलता, सेवा, सम्मान की भावधारा नैतिकता के द्वारा स्वयं को नियंत्रित और स्वानुशासन से ही उदित हो सकती है। जो आध्यात्मरामायण के प्रत्येक संवाद से सुस्पष्ट रूप से पद–पद पर परिलक्षित होता है। श्रीराम का आदर्श व्यवहार आज के इस परिस्थिति में निःसन्देह स्वीकरणीय है। इसी प्रकार उदात्त भावना से ओत–प्रोत होकर श्रीराम पिता के आदेश को शिरोधार्य करते हुए कहते भी हैं कि–

राजा के दण्डकारण्ये राज्यं दत्तं शुभेऽखिलम्।
अतस्तत्पालनार्थाय शीघ्रं यास्याभि भामिनी।। [8]

अर्थात् हे भामिनी! पिता जी ने मुझे दण्डकारण्य का सम्पूर्ण राज्य दिया है अतः मैं शीघ्र ही उसका पालन करने के लिए वहाँ

जाऊँगा। इस प्रकार की उत्कृष्ट भावना से युक्त आज का युवा वर्ग सम्भवतः नहीं दिखता, अपितु ऐसी परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर वे अपने माता–पिता को ही छली–कपटी के रूप में वर्णित करने लगते हैं तथा उन्हें ही दोषी सिद्ध करने लगते हैं। आज जहाँ अधिकांश परिवारों में धन, सत्ता या सम्पत्ति, गृह–कलह का कारण बन रही है, जहाँ बेटा अपने पिता से सम्पत्ति के लिए उलझ पड़ता है, जहाँ भाई–भाई का गला काटता है, वहाँ ऐसे स्वार्थी लोलुप और मोह–जलधि में डूबते लोगों के लिए राग और भरत का त्याग तथा लक्षण का सेवा–भाव 'प्रकाश–स्तंभ' बनकर अडिग खड़ा है, जिसको आत्मसात् कर प्रगति एवं सौहार्द के पथ पर आगे बढ़ा जा सकता है। यह राम ही हैं जो बिना किसी प्रश्न–प्रतिप्रश्न या विरोध की परम्परा से प्राप्त राज्य को छोड़ते हैं और अपने अनुज लक्ष्मण से कह उठते हैं कि–

> न मे भोगागमे वाञ्छा न मे भोगविवर्जने।
> आगच्छत्वथ मागच्छत्वभोगवशगो भवेत्।। [10]

अर्थात् हमें न तो भोगों की प्राप्ति की इच्छा है और न उन्हें त्यागने की। भोग आयें या न आयें हम भोगों के अधीन नहीं हैं। वस्तुतः त्याग और समता के ये भाव ही भाई–भाई के हृदय में परस्पर प्रेम की अविरल धारा प्रवाहित करने के कारक बने हैं। एक ओर राम हैं कि बड़ी सहजता से सम्पूर्ण सत्ता को भरत को हस्तान्तरित करना चाहते हैं और दूसरी ओर भरत हैं कि अनीति से अनायास प्राप्त सत्ता–सुख उन्हें स्वीकार्य नहीं। अध्यात्मरामायण के अयोध्याकाण्ड में वर्णन प्राप्त होता है–

> रामो राजाधिराजो वयं तस्यैव किङ्कराः।
> श्वः प्रभाते गमिषयामो राममानेतुमञ्जसा।।
> शत्रुघ्नसहितस्तूर्णं यूयमायात वा न वा।
> रामो यथा वने यातस्तथाहं वल्कलाम्बरः।।
> फलमूलकृताहारः शत्रुघ्नसहितो मुने।
> भूमिशायी जटाधारी यावद्रामो निवर्तते।। [11]

अर्थात् भरत कहते हैं कि महाराज राम ही राजाधिराज हैं और जब तक रामचन्द्र जी नहीं लौटते तब तक मैं भी शत्रुघ्नसंहित वल्कल–वस्त्र और जटा जूट धारण कर कन्द–मूल–फलादि का भोजन करूँगा और पृथ्वी पर शयन करूँगा। भरत अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्रति समर्पित रहते हैं और श्रेष्ठभाव रखते हैं। इसीलिए तो राम को राज्य प्रत्यावर्तित करने चल पड़ते हैं दोनों के मन में 'तेन त्यक्तेन भु०जीथाः' की पावन भावना प्रदर्शित होती है। लेकिन आज के समाज में त्याग की भावना नहीं अपितु भोग की भावना बलवती दिखाई देती है। जो एक अशांति का मूलभूत कारण भी कहा जा सकता है। आज अपने भाई के हिस्सा को भी लेकर उपयोग करना चहता है, ऐसी स्थिति में अध्यात्मरामायण की उपयोगिता समाज को सुदृढ़ बना सकती है। त्याग की भावना से युक्त होकर भरत कहते हैं–

> राज्यं पालय पि×यं ते ज्येष्ठस्त्वं में पिता यथा।
> क्षत्रियाणामयं धर्मों यत्प्रजापरिपालनम्।।
> उत्थाप्य राघवः शीघ्रमारोप्याœेऽतिभक्तितः।
> उवाच भरतं रामः स्नेहार्द्रनयनः शनैः।

हे महाभाग! यह पैतृक राज्य आप ही का है, आप इसका पालन करिए। पितृतुल्य आप हमारे बड़े भाई हैं। अतः हे महाराज! प्रजा का पालन करना ही क्षत्रियों का मुख्य धर्म है। उत्कृष्ट विचारधारा से युक्त भरत के ऐसे ओजस्वी वाक्यों को सुनकर श्रीराम सहर्ष अपने भाई भरत को गले लगा लेते हैं। वास्तव में इस प्रेम के पीछे जो तत्त्व है, वह परस्पर विश्वास और हार्दिक प्रेम है। आज भी जो परिवार परस्पर प्रेम और विश्वास की डोर से बंधा हो, वह टूट नहीं सकता। अधिकांश संयुक्त परिवारों में बिखराव का कारण मुख्य रूप से संदेह, असहिष्णुता, स्वार्थ व द्वेष की भावना ही है, किन्तु जहाँ आज भी राम सा त्याग, लक्ष्मण सी सेवा व निश्छल प्रेम और भरत सा विश्वास जिस परिवार में बचा है–वह परिवार संयुक्त है और अलग होने से बच गया है।

अध्यात्मरामायण में पति–पत्नी के मध्य प्रेम, समर्पण व निष्ठा का भाव भी स्पृहणीय है। जैसा कि राम–सीता, अत्रि अनुसूइया आदि इसके अन्यतम उदाहरण के रूप में दृष्टिगत होते हैं। ये दम्पत्ति दुःख–सुख, हानि–लाभ दोनों में ही एक दूसरे के सहभागी बने हैं। राम के वन–गमन के समय सीता ने राज–प्रसाद के भोगों को छोड़ने में एक क्षण भी नहीं लगाया। उनका तो अपने प्रियतम राम से सीधा सा प्रश्न था–

> त्वदन्यामदोषां मां धर्मज्ञोऽसि दयापरः।
> त्वत्समीपे स्थितां राम को वा मां धर्षयेद्वने।।
> फलमूलादिकं यथत्तव भुक्तावशेषितम्।
> तदेवामृततुल्यं में तेन तुष्टा रमाम्यहम्।।
> त्वया सह चरन्त्या में कुशाः काशाúाकण्टकाः।।
> पुष्पास्तरणतुल्या में भविष्यन्ति न संशयः।।
> अहं त्वा क्लेशये नैव भवेयं कार्यसाधिनी।
> बाल्ये मां वीक्ष्य कर्विाद्वैज्योतिः शास्त्रविशारदः।।
> प्राह ते विपिने वासः पत्या सह भविष्यति।
> सत्यवादी द्विजो भूयाद्गमिष्यामि त्वया सह।। [11]

अर्थात् आप धर्मज्ञ और दयालु हैं, फिर अपनी अनन्यभक्ता और दोषहीना मुझ पत्नी को क्यों छोड़ते हैं? हे राम! वन में भी आपके पास रहते हुए मेरा कोई क्या बिगाड़ सकता है? जो भी फल–मूलादि आपके खाने से बचेंगे वे ही मेरे लिए अमृत के समान होंगे। उनसे सन्तुष्ट होकर मैं आनन्दपूर्वक रहूँगी, इसमें कोई सन्देह हैं। उनसे सन्तुष्ट होकर मैं आनन्दपूर्वक रहूँगी, इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप के साथ विचरते हुए मेरे लिए, कुश–काश और कण्टकादि भी फूलों के बिछौनों के समान होंगे। अतः मैं अवश्य आपके साथ वन में चलूँगी। रामायण को वर्णित यही श्रेष्ठ भाव विवाह–संस्था को स्थायी बनाये रखने में सहायक है जहाँ पति–पत्नी दोनों ही त्यागमयी वृत्ति से एक–दूसरे के सहायक बन जाते है। भारतीय संस्कृति में विवाह केवल एन्द्रिय–तृप्ति के लिए किया गया एक समझौता नहीं है, अपितु एक पावन धार्मिक एवं सामाजिक संस्कार है। जहाँ अग्नि को साक्षी मानकर पति–पत्नी जीवन भर एक साथ रहकर अनेक सांसारिक दायित्व परिपूर्ण करने के लिए संकल्पबद्ध होते हैं। जहाँ केवल सुख ही सुख भोगने की आतुरता और स्वार्थपरता नहीं अपितु जीवन संघर्ष में कन्धा मिलाकर एक दूसरे के साथ देने का संकल्प भी है। आज अपने देश में यह परम्परा पाश्चात्य अपसंस्कृति के अन्धे अनुकरण के फलस्वरूप ह्रासोन्मुख है। जबकि हमारे ऋषि–मुनियों के बताये गए उपाय एवं अध्यात्मरामायण में वर्णित पति–पत्नी के व्यवहार आज सम्पूर्ण जनमानस के लिए अनुकरणीय एवं उपादेय है। अध्यात्मरामायण में अनुसइया द्वारा सीता के लिए आशीर्वाद का वर्णन प्राप्त होता है जैसे–

> पातिव्रत्यं पुरस्कृत्य राममन्वेहि जानकि।
> कुशली राघवो यातु त्वया सह पुनर्गृहम्।। [14]

अर्थात् 'हे जानकि! तुम पातिव्रत्य का पालन करती हुई सदा राम की ही अनुगामिनी रहना। रघुनाथ जी तुम्हारे साथ कुशपूर्वक घर लौटें। यही मेरी मंगलकामना और स्नेहाशीर्वाद है।

अनुसूइया भी एक उत्कृष्ट सन्देश सम्पूर्ण मानव–समाज को देती है। इस प्रकार के संतोष की प्रतिक्रिया उन धनी और अविवेकी लोगों को भी एक स्वस्थ संदेश देती है, जो अपनी सन्तान के थोड़े से कष्ट या संकट में ही उसका ससुराल में अनुचित हस्तक्षेप करते हैं। यही नहीं संतान को अविवेकी परामर्श देकर कलह के बीज बोते हैं या उनके वैवाहिक जीवन को ही नष्ट कर डालते हैं। ऐसी स्थिति में अध्यात्मरामायण अद्यतन समाज के लिए भी अनुकरणीय है।

अध्यात्मरामायण में श्रेष्ठ जीवन पद्धति के लिए अनेक उदाहरण आज की दिशा–विहीन युवा–पीढ़ी को बहुत कुछ कह जाता है और शिक्षा प्रदान कर दिशा–निर्देश देता है। यह उज्जवल संस्कृति विकृति–मुक्त समाज झिलमिलाता है। विचारों की ऐसी उज्जवलता, चारित्रिक दृढ़ता केवल स्त्री पक्ष में ही स्वीकार्य नहीं है। अपितु व्यास के पुरुष पात्र जैसे–राम, लक्ष्मण, सदृश सभी सत्पात्र इस निष्ठा का निर्वाह करते दृष्टिगत होते हैं जो आज के समाज को उचित शिक्षा प्रदान करता है।

महर्षि बादरायण व्यास का समाज ऐसे मुखिया के हाथ संरक्षित है, जो विवेक से अपने सभी–पक्षों की रक्षा कर रहा है तथा निर्देश दे रहा है। जैसा कि आध्यात्मरामायण में दृष्टिगत होता है–

ततः पित्रैव सुव्यक्तं राज्यं दत्तं तथैव हि।
दण्डकारण्यराज्यं में दत्तं पित्रा तथैव च।।
अतः पितुर्वचः कार्यमावाभ्यामतियत्नतः।
पितुर्वचनमुल्लङ्घय स्वतन्त्रो यस्तु वर्तते।।
स जीवन्नेव मृतको देहान्ते निरयं व्रजेत्।
तस्माद्राज्यं प्रशाधि त्वं वयं दण्डकपालकाः।। [15]

श्रीराम, भरत को समझाते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य अपने पिता के वचनों का उल्लंघन करता हुआ स्वेच्छापूर्वक व्यवहार करता है वह जीता हुआ भी मृतक के समान होता है। अतः तुम राज्य–शासन करो, हम दण्डक वन की रक्षा करेंगे। सम्पूर्ण वस्तु–स्थिति से यह ज्ञात होता है कि महर्षि व्यास के समाज में तो सदाचरण, न्याय और नीति के मणिरत्न सर्वत्र बिखरे हैं। महर्षि व्यासकृत अध्यात्मरामायण अपने पुत्र की अपेक्षाओं की प्रतिपूर्ति के साथ–साथ चिरंतन शाश्वत मूल्यों का संवाहक भी है। निःसन्देह यह मानवीय मूल्यों से सम्पृक्त एक विलक्षण और उदात्त कृति है। विवके के निकष पर खरे उतरे और जीवन को सार्थकता प्रदान करने वाले उन सिद्धान्तों और नियमों को यहाँ खुला समर्थन प्राप्त है, जिनके अनुपालन द्वारा मनुष्य कहलाने का अधिकारी बनता है। 'अध्यात्मरामायण' एक ऐसा मंगल–कलश है, जिसमें, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर व्यष्टि एवं समाप्ति दोनों के लिए ही मंगलमयी भाव–राशि का पावन गंगाजल लबालब भरा है। सत्य, प्रेम, त्याग, परोपकार, न्याय, कर्तव्यनिष्ठा, शान्ति और सहअस्तित्व की भावना से अनुप्राणित मानव एक आदर्श व्यक्ति, एक आदर्श परिवार, एक आदर्श समाज एवं एक आदर्श राष्ट्र और एक आदर्श विश्व की संकल्पना को जीवंत रूप प्रदान कर सकता है। ये वे जीवन–मूल्य हैं, जिनकी आवश्यकता किसी भी समाज को पहले थी, आज है और आगे भी रहेगी। आध्यात्मरामायण की नैतिकता के आलोक में आज की बाजारवादी स्वार्थी संस्कृति जनित कुण्ठा, संत्रास, संदेश, विद्वेष, द्विधाभाव और असंतोष में जी रहे समाज को एक सार्थक दिशा प्राप्त हो सकती है।

महर्षि व्यास रचित अध्यात्मरामायण में सर्वत्र अधिकारों से पूर्ण दायित्व का अनुपालन है। परस्पर त्याग, सौहार्द और समप्रण की अनुगूँज है। स्व–सुखोन्वेषण से पूर्ण निहितार्थ चिन्ता का मंगल दर्पण है। व्यास के ये मूल्य और स्थापनाएँ शाश्वत होने के कारण ही आज के युग से उसे जोड़ती है और अपनी उपादेयता सिद्ध करती है। इनके ही परिप्रेक्ष्य में आज केवल और केवल भौतिक उन्नति के लिए संघर्षरत, येन–केन अर्थोपार्जन से निरन्तर असंतोष और तनाव में जी रहे अधीर समाज की व्याकुलता का स्थायी समाधान अध्यात्मरामायण में मिल सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. आ.रा., महात्म्य, श्लोक 59
2. महाभारत, 12/109/12
3. मनु., 2/12
4. मनु. 2
5. अ.रा./उ.का./स0 4/21–22
6. अ.रा./बा.का./स. 3/64–65
7. अ.रा./अयो.का./स. 4/46–48
8. अ.रा./अयो.का./स. 3/60–62
9. अ.रा./अयो.का./स. 4/57
10. अ.रा./अयो.का./स. 6/9
11. अ.रा./अयो.का./स. 9/23, 37
12. अ.रा./अयो.का./स. 9/23, 27
13. अ.रा./अयो.का./स. 4/72–76
14. अ.रा./अयो.का./स. 9/90
15. अ.रा./अयो.का./स. 9/31–32